प्रेम वाहिनी

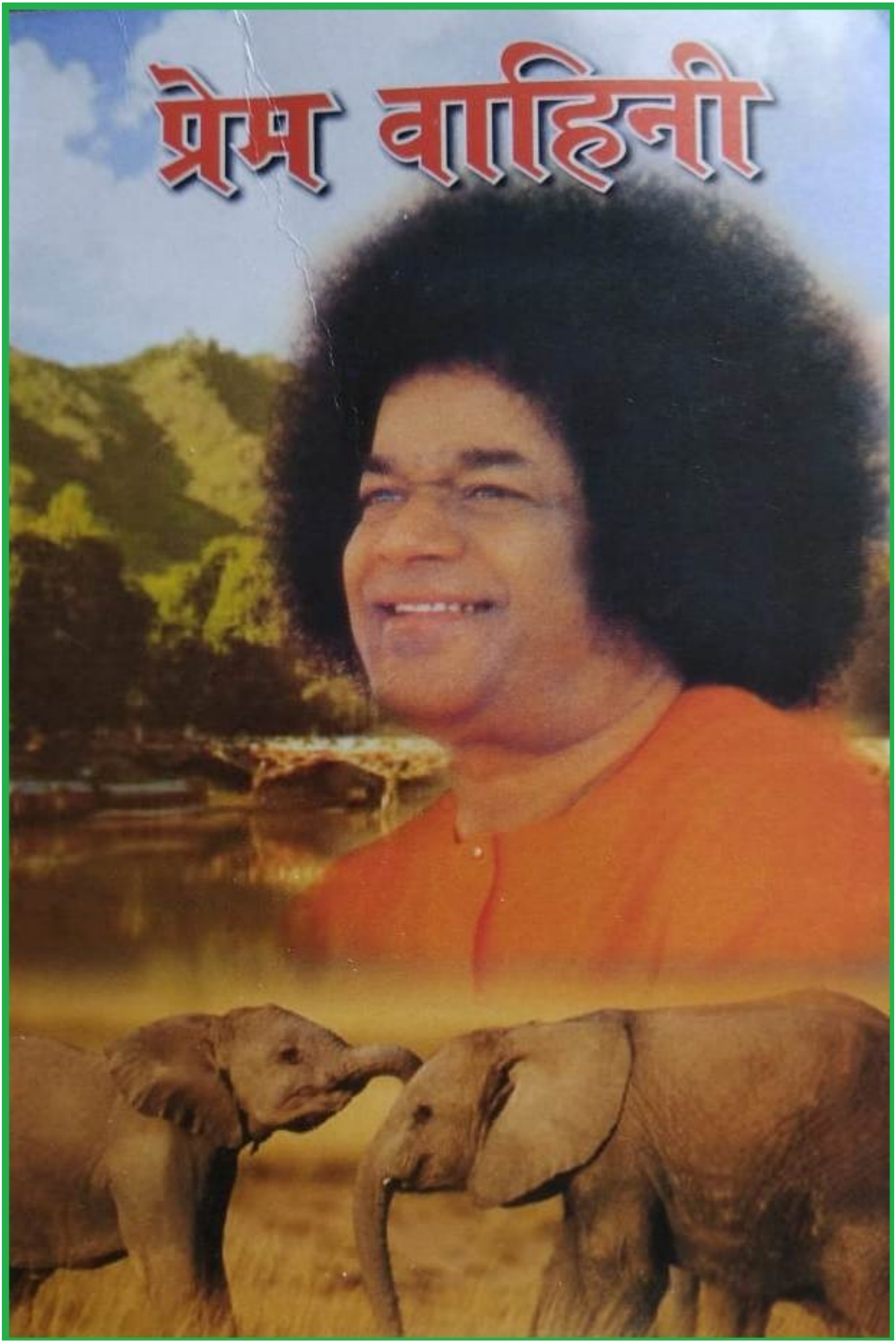

२१

मानवता और धर्म चरित्र में अन्तर

मानव या मनुष्य प्रेम से युक्त होते हैं। उनके हृदय ही दया के स्त्रोत होते हैं। उन्हें सत्य-भाषण का गुण प्राप्त होता है। मनुष्य के मन की विशिष्टता शान्ति होती है। यह मन की आदि प्रवृत्ति होती है। शान्ति प्राप्त करने के लिए कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। जैसे सोना और चाँदी भूगर्भ में छिपे रहते हैं, मोती और मूंगा समुद्र में रहते हैं, शान्ति और आनन्द भी मन के क्रिया-कलापों में प्रच्छन्न रहते हैं, इन छिपे हुए गुणों को प्राप्त करने की आकांक्षा से यदि कोई मन की गहराइयों में उतरकर उसके कार्यो का आन्तरिक विवेचन करता है तो वह प्रेम से भर जाता है। जिन्होंने अपने आपको इस प्रकार प्रेम से पूर्ण कर लिया है वे ही मनुष्य कहे जाने के योग्य हैं। जो प्रेम से रहित हैं; वे दानव हैं, राक्षस हैं और मानवेतर हैं। प्रेम का वह पवित्र गुण कभी व्यक्त और कभी अव्यक्त ऐसा नहीं रहेगा। वह तो सदा अपरिवर्तनशील होकर रहेगा। वह तो एक, अविभाज्य होता है। जो प्रेम से संपृक्त होते हैं वे द्वेष, स्वार्थ, अन्याय, दुराचार और अनैतिकता के लिए असमर्थ होते हैं, परन्तु जिनमें प्रेम होता है और उपर्युक्त दुर्गुण नहीं होते हैं वे तो सर्वोपरि होते हैं। दानव वे होते हैं जो प्रेम को पद्दलित कर क्षुद्र गुणों को महत्ता प्रदान करते हैं, जबकि मानव वे होते हैं जो क्षुद्रताओं को सांप समझकर नाश कर देने योग्य मानते हैं और एकमात्र प्रेम को वृद्धि करने योग्य सद्गुण मानते हैं। दुराचारी और कुप्रवृत्तियां मानव की मानवता को ही विकृत् करते हैं। प्रेम रूपी अमृत से छलकते हृदय ही मानव में सच्ची मानवता की झलक देते हैं। प्रेम से तात्पर्य शुद्ध, अविकृत, निस्वार्थ प्रेम है, जो आगे भी वैसा ही रहता है।

मानव और दानव में अन्तर केवल 'मा' और 'दा' का है। परन्तु 'मा' की ध्वनि कोमल, मृदु और प्रतीकवाद में अमरत्व लिये हुये होती है। जबकि 'दा' की ध्वनि निर्दय, उद्दण्ड और दाहक होती है। जिसमें मृदुता न हो और

जो अनैतिकता को प्रेरणा देने वाली कुवृत्तियों का दमन करने में अक्षम हो, क्या वह मानव हो सकता है? उनकी दानवीय प्रकृति होती है, यद्यपि आकृति मानव की होती है ! क्योकि आकृति ही प्रधान नहीं होती है, वहाँ तो चरित्र की प्रधानता देखी जाती है। वे लोग जिनमें दयालुता, न्यायप्रियता न हो और जिनका स्वभाव दानवीय हो, मानवाकृति में होने पर भी मानव कैसे हो सकते है? नहीं, उन्हें मानव नहीं कहना चाहिए। अब मेरे प्रवचनों के वाक्य भी तो आकृति के आधार से नहीं सबंधित हैं, वे तो मानव के गुणों पर आधारित हैं। मानवों में अनेक दानव होते हैं। दोनों ही की आकृति में साम्य होता है, परन्तु उनके चरित्र की विशेषताओं से उन्हें अलग-अलग मानव और दानव के रूप में पहचाना जाता जा सकता है। मानव अपने को दयालुता, न्यायप्रियता, प्रेम और सत्य के कोमल मृदु कार्यो से संयुक्त करता है, वे ही तो उसके आत्म-साक्षात्कार की संभावना और अमरत्व के साक्षी होते है। उनका सत्स्वभाव उनके मुखमण्डल से आनन्द के रूप में प्रतिभासित होता है; परन्तु उस सदाशयता से रहित यदि उसके मुखमण्डल पर प्रसन्नता का उन्माद है, तो उससे दानवीय विनाशक ज्वाला की किरणें फूट रही हैं, उनमें आनन्द की सुषमा नहीं है।